THE TIMES OF INDIA

Date: 11-03-25

Write A New Plot

India can't put off land reform any longer. A tragedy in Maharashtra was a sharp reminder

TOI Editorials

Last week, Bombay HC cancelled land acquisition for an international airport in a Navi Mumbai village. Farmers whose land was acquired in 2017 had complained they weren't adequately compensated. HC agreed the state shouldn't have used an urgency clause that denied them a say in the matter. Just two weeks before this, Punjab & Haryana HC had settled a 64-year-old matter by ordering a Haryana discom to compensate farmers whose land it had acquired in 1961. Not every land dispute culminates in a courtroom, though. Santosh Deshmukh, sarpanch of Maasajog village in Beed, Maharashtra, was brutally murdered last Dec for resisting a politically connected person trying to control land leases for wind farms. That case led to the sacking of a state minister. But nothing's changed on the ground.

As a growing economy, India needs land for building cities, high- ways, airports, factories, mining, and much more. But land holdings are typically so small, and land titles so mixed up, that land acquisition has become one of the chief hurdles for growth. Data research group Land Conflict Watch says 10.5mn Indians are currently affected by land conflicts - up from 6.5mn in 2020 and investments worth $396bn are stuck as a result. Overall, some 50,000 sq km-roughly the area of Punjab is tied up in these disputes, most of which won't be resolved anytime soon. In 2019, think tank Centre for Policy Research said the average pendency of land cases in India is 20 years.

In the Navi Mumbai airport case, eight precious years were wasted because the state chose to disenfranchise landowners. In roughly the same time, UP built a new international airport at Jewar through negotiation. The Deshmukh case, meanwhile, shows the perils of the state taking a hands-off approach where small, vulnerable farmers and big money are involved. It leaves the door open for bullying and exploitation by goons and politicians. For India to grow at over 8% annually - which it needs to land reforms that remove hurdles to growth without trampling landowners are a must.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 11-03-25

Participating Women Means Being Safe

ET Editorials

The level of women's participation is a good barometer to determine a country's place on the development spectrum. The spotlight on 'women-led development' this Women's Day was in keeping with India's efforts to become 'developed' by 2047. But the rape of two women near Hampi in Karnataka made the news. Women can hardly essay India's development if they are unable to safely participate in such efforts.

Women's participation is about enabling conditions, safety being a core enabler: Laws and punishments for crimes against women matter. Implementation of the law creates deterrence through exemplary punishment. But perfect implementation doesn't happen, thereby the aim should be to minimise instances of violation.Deterrence is only part of the story. Increasing women's participation means removing barriers to their participation. Preventive and proactive measures to improve women's safety on roads, in their workplaces, in public and not-so- public spaces will remove a major obstacle. An average of 86 rapes are reported every day in India. This does not include sexual harassment, intimidation and other forms of violence directed at women.

Improving women's safety via pragmatic means like better street lighting will have a positive outcome on well-being and ease of living. It requires creating incentives of drawing people back into public space through mechanisms like accessible, reliable and affordable public transport systems that will bring more people out, providing safety in numbers. It will change the design of commercial activities, in turn, changing town planning. Increasing pedestrian traffic will mean better lighting, etc. If India is serious about development, it must first become safer for women to come out and participate.

दैनिक भास्कर

Date: 11-03-25

केवल टैरिफ बढ़ाने से ही अमेरिका महान नहीं होगा

संपादकीय

वैश्विक प्रतिस्पर्धी आंकड़ों के दौर में कई देश प्रति-व्यक्ति आय में अमेरिका से आगे हैं। व्यापार, तकनीकी-विकास और सामरिक सामर्थ्य में चीन एक बड़ी चुनौती बन चुका है। ऐसे में अगर ट्रम्प देश - हित में अपने

व्यापार को बढ़ाने और टैरिफ छूट को खत्म करने का ऐलान करते हैं तो क्या ? पिछले 14 वर्षों में जहां चीन का ट्रेड सरप्लस (अधिशेष) लगातार बढ़ता हुआ 1 ट्रिलियन (958 अरब डॉलर जा पहुंचा है, वहीं अमेरिका का ट्रेड डेफिसिट (घाटा) लगातार गिरता हुआ 1.17 ट्रिलियन डॉलर हो गया है। चीन लगातार दुनिया को ज्यादा बेच रहा है और कम खरीद रहा है, वहीं अमेरिका ज्यादा खरीद रहा है। कम बेच रहा है। अमेरिकी युवाओं को अपने देश के स्तरीय रोजगार में वह स्थान नहीं मिल रहा है, क्योंकि कॉर्पोरेट्स को चीन, भारत, ताइवान, इजराइल से अपेक्षाकृत सस्ते तकनीकी एक्सपर्ट्स मिल रहे हैं। टेक्नोलॉजी की दौड़ में अमेरिका का वर्चस्व टूटने का सबूत है डीपसीक, जो इस बात की तस्दीक है कि कम समय, खर्च, गुणवत्ता वाले जीपीयू के सहारे भी बेहद कम बिजली खपत वाला एआई मॉडल बना सकते हैं। 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' केवल टैरिफ बढ़ाने से ही नहीं होगा। क्या अमेरिकी युवाओं का शिक्षा के प्रति रुझान बढ़ाने का उपक्रम किया जा रहा है? 36 करोड़ आबादी वाले इस मुल्क का युवा क्या आराम की जिंदगी छोड़ नई दौड़ में शामिल होने को तैयार है ?

दैनिक जागरण

Date: 11-03-25

शिक्षा नीति पर रार

संपादकीय

जैसा अंदेशा था, वैसा ही हुआ। संसद के बजट सत्र के दूसरे चरण की शुरुआत हंगामे से हुई। जिन मुद्दों पर हंगामा हुआ, उनमें नई शिक्षा नीति भी है। इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण और कुछ नहीं कि नई शिक्षा नीति को दलगत राजनीतिक हितों से जोड़कर देखा जा रहा है और कुछ राज्यों की ओर से केवल इसलिए उसका विरोध किया जा रहा है, ताकि लोगों की भावनाओं को भड़काकर राजनीतिक लाभ उठाया जा सके। नई शिक्षा नीति का सबसे अधिक विरोध तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एमके स्टालिन की ओर से किया जा रहा है। इस विरोध के पीछे क्षुद्र राजनीति है। स्टालिन को सबसे अधिक आपत्ति नई शिक्षा नीति के त्रिभाषा फार्मूले पर है। वह फार्मूला नवा नहीं है। यह 1968 में ही बन गया था। इसमें यह प्रविधान था कि गैर हिंदी भाषी राज्य अपनी स्थानीय भाषा और अंग्रेजी के साथ तीसरी भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाएंगे। यह उल्लेखनीय है कि 2020 की नई शिक्षा नीति में हिंदी की अनिवार्यता खत्म कर दी गई है। इसके बाद भी स्टालिन वह शोर

मचाने में लगे हुए हैं कि त्रिभाषा फार्मूले के जरिये मोदी सरकार तमिलनाडु पर हिंदी थोपना चाहती है। यह निरा झूठ है और इसका उद्देश्य लोगों को बरगलाना है।

तमिलनाडु में अगले वर्ष विधानसभा चुनाव होने हैं। स्टालिन इन चुनावों में अपने पक्ष में माहौल बनाने के लिए ही नई शिक्षा नीति का विरोध करने में लगे हुए हैं। समस्या यह है कि इसके लिए वह है। झूठ बोलने से भी नहीं चूक रहे हैं। संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों के फेर में उन्होंने इतना उग्र रूप धारण कर लिया है कि हिंदी के साथ संस्कृत पर भी आपत्ति जता रहे हैं। हिंदी विरोध के अलावा उन्होंने परिसीमन को लेकर भी यह माहौल बनाना शुरू कर दिया है कि इससे दक्षिण के राज्यों को राजनीतिक क्षति उठानी पड़ेगी। हालांकि प्रधानमंत्री और गृहमंत्री यह स्पष्ट कर चुके हैं कि परिसीमन से किसी राज्य को कोई नुकसान नहीं होने दिया जाएगा, लेकिन स्टालिन ऐसा ही होने का हौवा खड़ा करने में लगे हुए हैं। यह सही है कि लोकसभा सीटों का परिसीमन प्रस्तावित है, लेकिन वह तो तब होगा, जब जनगणना होगी। जब न जनगणना हुई है और न ही यह तय हुआ है कि वह किस आधार पर होगा, तब फिर स्टालिन उसे लेकर लोगों को आशंकित करने में क्यों जुटे हुए हैं? इससे बुरी बात और कोई नहीं कि डीएमके नेता शिक्षा नीति को अपनी सस्ती राजनीति का विषय बनाएं और वह भी झूठ का सहारा लेकर उन्हें ऐसा करने से रोका जाना चाहिए, क्योंकि त्रिभाषा फार्मूले में हिंदी का उल्लेख तक नहीं है। यदि स्टालिन को यकीन न हो तो वह नई शिक्षा नीति तैयार करने वाली समिति के प्रमुख के. कस्तूरीरंगन से संपर्क करें, जो खुद तमिलियन हैं।

Date: 11-03-25

भारत के लिए आपदा में अवसर

भरत झुनझुनवाला, (लेखक अर्थशास्त्री हैं)

राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने भारत से आयातित होने वाले माल पर आयात कर (टैरिफ) बढ़ाने की घोषणा की है। नए कर 2 अप्रैल से प्रभावी हो जाएंगे। ट्रंप को चिंता है कि अमेरिका द्वारा दूसरे देशों से जो माल खरीदा जा रहा है, उससे अमेरिकी उद्योग चौपट हो रहे हैं। अमेरिका दूसरे देशों पर निर्भर होता जा रहा है, विशेषकर भारत और चीन पर। ऐसे में ट्रंप चाहते हैं कि अमेरिका में खपत होने वाले माल का अधिकाधिक उत्पादन देश में ही किया जाए, जिससे अमेरिका दूसरे देश के शिकंजे से बच सके। इस दिशा में ट्रंप ने एलान किया है कि दो अप्रैल से वह भारत से आयातित होने वाले माल पर उतना आयात कर लगाएंगे, जितना भारत द्वारा अमेरिका से आयातित होने वाले माल पर लगाया जाता है। ट्रंप का सोच है कि ऊंचे आयात कर लगाने से आयात महंगे हो जाएंगे और इसकी तुलना में घरेलू उत्पादन सस्ता पड़ने लगेगा, जिससे अमेरिका में उद्योग चल निकलेंगे, रोजगार उत्पन्न होंगे और अमेरिकी आर्थिकी स्वावलंबन की और बढ़ेगी। हालांकि आयात कर लगाने से व्यापार

घाटा कम नहीं होगा। जब आयात अधिक और निर्यात कम हो तो देश का व्यापार घाटे में चला जाता है, जैसे घर के खर्च अधिक और आय कम हो तो परिवार को घाटा झेलना पड़ता है।

आर्थिकी के लिए किसी भी देश को विदेशी मुद्रा बहुत आवश्यक होती है। विदेशी मुद्रा मुख्य रूप से दो स्रोतों से प्राप्त होती है। एक निर्यात और दूसरे, ऋण से निर्यात और ऋण से मिलने वाली विदेशी मुद्रा का उपयोग आयात भुगतान के लिए किया जाता है। इसमें एक फार्मूला बनता है: निर्यात + ऋण आयात स्वाभाविक है कि निर्यात और आयात बराबर तब ही होंगे, जब ऋण शून्य हौ जाए । अर्थात व्यापार घाटा तभी शून्य होगा, जब ऋण शून्य हो जाए इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लीजिए एक दुकानदार को ऊंचे जीवन स्तर की आदत है। वह ऋण लेकर महंगी कार में घूमता है। ऋण पर ब्याज देने के कारण उसकी दुकान घाटे में चल रही है। ऐसे में यदि वह विक्रय की राशि में से 10 प्रतिशत रकम ऋण पर ब्याज देने के लिए अलग रख दे तो दुकान का घाटा बढ़ेगा। तब 100 रुपये की बिक्री में से दुकान चलाने के लिए केवल 90 रुपये मिलेंगे और दुकान का घाटा बढ़ता जाएगा। जैसे कैंसर के रोगी को घी पिलाने से उपचार नहीं होता और उसे रेडिएशन थेरेपी देनी ही पड़ती है, वैसे ही घाटे के रोगी अमेरिका का आयात कर बढ़ने से उपचार नहीं होगा। उसे अपने सरकारी खर्च घटाने होंगे। इस दिशा में पहल तो हुई, पर विरोध भी शुरू हो गया है।

अमेरिका का वार्षिक घाटा करीब 1.8 ट्रिलियन (लाख करोड़) डालर का है। इस घाटे की भरपाई के लिए अमेरिकी सरकार भारी मात्रा में ऋण ले रही है। इस ऋण से मिले डालर का उपयोग अमेरिका द्वारा भारत, चीन आदि देशों से माल का आयात करने के लिए किया जा रहा है। इस कारण अमेरिका का व्यापार घाटा बढ़ा हुआ है। इस ऋण से अमेरिकी सरकार अपने नागरिकों को बेरोजगारी भत्ता एवं स्वास्थ्य सेवाएं इत्यादि मुहैया कराती हैं, जिससे अमेरिकी नागरिक का जीवन स्तर ऊंचा बना हुआ है। जिस प्रकार दुकानदार को ऋण लेकर लक्जरी कार में सैर करने की लत लग जाए तो उसकी दुकान घाटे में चली जाती है, उसी प्रकार अमेरिकी नागरिकों की ऊंचे जीवन स्तर की लत से अमेरिका की दुकानदारी घाटे में चल रही है। जब तक अमेरिकी सरकार ऋण लेती रहेगी, तब तक निश्चित रूप से निर्यात कम और आयात अधिक होंगे और व्यापार घाटा शून्य नहीं हो सकता।

यदि ट्रंप द्वारा आयात कर बढ़ाए जाते हैं तो व्यापार घाटा कम होने के स्थान पर बढ़ेगा। आयात कर बढ़ाने से वस्तुएं महंगी होंगी और आयात घटेंगे। आयात घटने से अमेरिका में चीनी मुद्रा युआन की मांग घटेगी। उसकी मांग कम होने से युआन के दाम गिरेंगे और फिर डालर के दाम बढ़ेंगे। डालर के दाम बढ़ने से अमेरिकी निर्यात दबाव में आएंगे। आयात कर बढ़ाने से आयात कम अवश्य होंगे, पर निर्यात भी घटेंगे और व्यापार घाटा पूर्ववत बना रहेगा। व्यापार घाटे को कम करने का उपाय है कि अमेरिकी सरकार अपने बजट घाटे पर नियंत्रण करे। जब अमेरिकी सरकार विदेशी ऋण लेकर आयात करना बंद कर देगी तब निर्यात और आयात का कांटा बराबर हो जाएगा।

पहले कार्यकाल में भी आयात कर बढ़ाकर ट्रंप घाटे पर नियंत्रण नहीं कर पाए थे, लेकिन यह भी सही है कि ट्रंप के पहले कार्यकाल में चीन से अमेरिका का व्यापार घाटा कम हुआ था, लेकिन वियतनाम और दूसरे देशों से

व्यापार घाटा उतना ही बढ़ गया था। ट्रंप बजट घाटे को लेकर भी चिंतित हैं। उन्होंने एलन मस्क को जिम्मेदारी दी है कि वह सरकार में निहित अकुशलताओं को चिह्नित करें और सरकारी फिजूलखर्ची पर नियंत्रण करें, लेकिन यह पहल ऊंट के मुंह में जीरा साबित होगी। इस शोर का उद्देश्य घरेलू वोटर को लुभाना मात्र है। सच यह है कि अमेरिकी जनता अपनी कमाई से अधिक खपत कर रही है। इस ऊंचे जीवन स्तर को पोषित करने के लिए अमेरिका द्वारा भारी मात्रा में ऋण लिया जा रहा है, जिसका तार्किक परिणाम व्यापार घाटा है।

भारत को चाहिए कि ट्रंप द्वारा लगाए जाने वाले आयात कर से डरने के बजाय अपना निर्यात अन्य देशों में करने के उपाय खोजे। कई विश्लेषकों का मत है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था आने वाले समय में संकट में पड़ सकती है। इसलिए भारत को चाहिए कि अपने निर्यात दूसरे देशों में बढ़ाने के प्रयास करे, जिससे अमेरिकी सरकार द्वारा आयात कर लगाने अथवा अमेरिकी अर्थव्यवस्था के संकट आने के कारण हमारे ऊपर परेशानी न आए। ट्रंप की कवायद डी-ग्लोबलाइजेशन या वि- वैश्वीकरण की तरफ एक महत्वपूर्ण कदम है। भारत से बड़ी मात्रा में पूंजी का पलायन हो रहा है। ऐसे में भारत को चाहिए कि वैश्वीकरण के रास्ते विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के पीछे भागने के स्थान पर अपनी पूंजी को बाहर जाने से रोकने के लिए उचित उपाय करे। यदि हमने इस संभावित चुनौती का सही तरीके से समाधान तलाश लिया तो ट्रंप द्वारा लगाए गए आयात कर हमारे लिए वरदान साबित हो सकते हैं।

Date: 11-03-25

भाषा पर भड़काने वाली राजनीति

कृपाशंकर चौबे, (लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में प्रोफेसर हैं)

तमिलनाडु के मुख्यमंत्री और द्रमुक नेता एमके स्टालिन हिंदी विरोध के लिए हद से ज्यादा आगे बढ़ गए हैं। वह अब हिंदी के खिलाफ उसकी बोलियों को खड़ा करने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने कहा है, 'अन्य राज्यों के मेरे प्यारे भाइयों और बहनों, कभी सोचा है कि हिंदी ने कितनी भारतीय भाषाओं को निगल लिया है? भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुंदेली, गढ़वाली, कुमाऊंनी, मगही, मारवाड़ी, मालवी, छत्तीसगढ़ी, संथाली, अंगिका, हो, खरिया, खोरठा, कुरमाली समेत कई अन्य अब अस्तित्व के लिए हांफ रही हैं। एक अखंड हिंदी पहचान के लिए जोर देने से प्राचीन मातृभाषाएं खत्म हो रही हैं। यूपी और बिहार कभी भी सिर्फ हिंदी के नहीं थे। गढ़ उनकी असली भाषाएं अब अतीत की निशानी बन गई हैं। तमिलनाडु इसका विरोध करता है।' कहने की जरूरत नहीं कि स्टालिन का यह वक्तव्य भड़काने वाला है। स्टालिन द्वारा हिंदी पर लगाया गया यह आरोप इसलिए निरर्थक है, क्योंकि हिंदी क्षेत्र की इन बौलियों भाषाओं के सम्मिलित रूप को ही हिंदी कहा जाता है। इनसे प्राप्त जीवनशक्ति से हिंदी फलती-फूलती है। ठेठ हिंदी का ठाठ उसकी बोलियों के सौंदर्य से निर्मित होता है।

हिंदी समाज एक साथ अपनी जनपदीय भाषा जैसे भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुंदेली, गढ़वाली, कुमाऊंनी, मगही भी बोलता है और हिंदी भी । लिखने-पढ़ने का अधिकांश कार्य वह हिंदी में जरूर करता है। इसीलिए राजभाषा अधिनियम के अनुसार उन्हें 'क' श्रेणी में रखा गया और दस राज्यों में बंटने के बावजूद उन्हें 'हिंदी भाषी' कहा गया। भोजपुरी, राजस्थानी, अवधी, ब्रज आदि हिंदी के अभिन्न अंग हैं। इन बोलियों एवं उपभाषाओं की समृद्धि से हिंदी को और हिंदी की समृद्धि से उसकी उपभाषाओं एवं बोलियों को लाभ होता रहा है। जब हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ रही है, तब स्टालिन जैसे नेता उसके घर को बांटने की कोशिश कर रहे हैं। सूचना-संचार में हिंदी का हस्तक्षेप तेजी से बढ़ रहा है। दुनिया के तमाम देश भारत जैसे बड़े बाजार के निमित्त हिंदी को अपने भविष्य का रास्ता मान रहे हैं। हिंदी के घर को बांटकर और समाज में विभेद पैदा कर स्टालिन खाई खोदने का काम कर रहे हैं।

इसके पहले उन्होंने संस्कृत का भी बेतुका विरोध किया था। इसी तरह वह यह दुष्प्रचार भी कर रहे हैं कि त्रिभाषा फार्मूला दरअसल हिंदी थोपने की कोशिश है। क्या ऐसे बयान देकर स्टालिन भारतीय भाषाओं को आपस में लड़ाने और अंग्रेजी को आधिपत्य जमाए रखने का अवसर नहीं दे रहे हैं?

हिंदी थोपने का नाहक आरोप लगाने वाले स्टालिन को यह बोध होना चाहिए कि भारतीय भाषाओं को खतरा अंग्रेजी से है। हिंदी का तमिल या किसी भारतीय भाषा से कोई झगड़ा नहीं यह नहीं भूलना चाहिए कि सभी भारतीय भाषाओं में एक सहकार संबंध रहा है। भारतीय भाषाओं एवं राज्यों को अलग-अलग खंडों में बांटे जाने के बावजूद भारत अपने सांस्कृतिक संदर्भों के कारण एक सूत्र में बंधा है। भारतीय भाषाओं के सहकार संबंध से तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती भलीभांति परिचित थे । इसीलिए वह हिंदी के प्रबल पक्षधर थे। वह तमिल समाचार पत्र 'इंडिया' के संपादक थे और उसमें वह एक पृष्ठ हिंदी को देते थे। 'इंडिया' के 15 दिसंबर, 1906 के अंक में उन्होंने लिखा था, 'तीस करोड़ लोगों में से आठ करोड़ से अधिक लोग हिंदी बोलते हैं। महाराष्ट्र से लेकर बंगाल के लोग हिंदी आसानी से समझ लेते हैं। तमिलभाषी, तेलुगुभाषी थोड़ा सा परिश्रम करेंगे तो हिंदी सीख सकते हैं।'

केंद्र सरकार 2022 से सुब्रह्मण्य भारती के जन्मदिन 11 दिसंबर को भारतीय भाषा दिवस के रूप में मनाती है। इसके अलावा भारतीय भाषाओं के संबंध को बल देने के लिए तीन वर्षों से काशी तमिल संगमम का आयोजन सफलतापूर्वक किया जा रहा है। लगता है इन आयोजनों से स्टालिन की बेचैनी बढ़ी है। तमिलनाडु में सत्ता विरोधी माहौल भी है। कदाचित स्टालिन ने इसीलिए भाषा के पुराने हथियार का उपयोग शुरू किया है। तमिलभाषी क्षेत्र में भाषा को राजनीति का हथियार बनाने का प्रयोग दशकों पुराना है। 1937 में मद्रास सरकार के प्रमुख के रूप में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने हाईस्कूल स्तर पर हिंदुस्तानी को अनिवार्य विषय बना दिया तो उसके खिलाफ उग्र आंदोलन शुरू हो गया था।

आत्मसम्मान आंदोलन के नेता ईवी रामास्वामी नायकर यानी पेरियार ने गिरफ्तारी दी थी। इनमें पेरियार की

छत्रछाया में ही पनपे सीएन अन्नादुरई और करुणानिधि जैसे नेता भी थे। करुणानिधि की राजनीति हिंदी विरोधी आंदोलन में हुई उनकी गिरफ्तारी से ही चमका। इस आंदोलन का प्रभाव दक्षिण के अन्य हिस्सें में भी दिखा, मगर उसकी तीव्रता और विस्तार तमिलनाडु जैसा नहीं था ।

संविधान के अनुसार 1965 में हिंदी को भारत की राजभाषा घोषित होना था। तब अंग्रेजी संघ की सहयोगी राजभाषा नहीं रह जाती, किंतु उसके कुछ दिन पूर्व ही मद्रास में सी. राजगोपालाचारी की स्वतंत्र पार्टी और अन्नादुरई की द्रमुक के नेतृत्व में तमिलभाषियों ने राजभाषा के रूप में हिंदी का विरोध करते हुए हिंसक आंदोलन शुरू कर दिया। यह वही राजगोपालाचारी थे, जिन्होंने कभी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में न केवल वक्तव्य दिया था, बल्कि मद्रास की सरकार के प्रमुख के तौर पर हिंदी को लागू भी किया था। तब से नाहक हिंदी विरोध की राजनीति वहां जारी है। यह देश की एकता के लिए घातक है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 11-03-25

ट्रंप के कदम और मंदी का जोखिम

संपादकीय

इस वर्ष जनवरी में अमेरिका के राष्ट्रपति का पद संभालने ! के बाद से नीतियां चुनने के मामले में डॉनल्ड ट्रंप इतना आगे-पीछे हुए हैं कि बाजार भ्रम में पड़ गया है। अमेरिका के कुछ सबसे करीबी व्यापार साझेदारों पर शुल्क लगाया गया और फिर या तो हटा दिया गया या टाल दिया गया। कुछ लोगों को अब भी संदेह है कि ट्रंप वाकई शुल्क लगाना चाहते हैं या बातचीत में अपनी शर्तें मनवाने के लिए शुल्क की धमकी भर दे रहे हैं। कोई नहीं जानता कि ये शुल्क कब लगेंगे, कितनी हद तक लगेंगे और लगेंगे भी या नहीं। इसीलिए यह अनुमान लगाना भी मुश्किल हो गया है कि किसी खास क्षेत्र या पूरी अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर इनका क्या असर होगा। यही बात हौसला पस्त कर रही है। अमेरिका में कुछ लोगों को तो अचानक हौसला पस्त होने और लोगों की धारणा बदलने से मंदी आने का डर भी सताने लगा है। न्यूयॉर्क फेडरल रिजर्व के पास मंदी की संभावना का पैमाना है, जो मंदी के सभी अनुमानों को इकट्ठा कर बताता है। अगस्त 2025 में यह सूचकांक अब तक के तीसरे सबसे ऊंचे स्तर पर पहुंच गया और ऐसा दशकों बाद हुआ। इससे पहले उसने 1970 के दशक के मध्य में और 1980 के दशक के आरंभ में इतनी ऊंचाई छुई थी। दोनों ही मौकों पर अमेरिका में उत्पादन घट गया था। बॉन्ड यील्ड भी कैलेंडर वर्ष की बची अवधि के लिए ऐसी ही चिंता जता रही है। दो साल में परिपक्व होने वाले अमेरिकी बॉन्ड पर यील्ड

पिछले कुछ हफ्तों में काफी कम हो गई है। इससे लगता है कि अर्थव्यवस्था धीमी हो जाएगी और फेडरल रिजर्व को दरें घटानी पड़ेंगी।

पिछले साल की उम्मीदों से यह एकदम उलट है। उस वक्त राष्ट्रपति चुनावों के नतीजे आने के बाद यील्ड तेजी से चढ़ी थी। माना जा रहा था कि ट्रंप कारोबार के लिए मददगार नीतियां लाएंगे, जिनसे वृद्धि को सहारा मिलेगा चाहे महंगाई भी बढ़े। उस समय लगा कि पहले करों में कटौती की जाएगी और उसके बाद शुल्क बढ़ाए जाएंगे। मगर ज्यादातर कारोबारी अब ऐसा नहीं मानते। बल्कि कुछ तो खुद राष्ट्रपति से पूछना चाहते हैं कि वह चाहते क्या हैं। रविवार को जब ट्रंप फॉक्स न्यूज पर दिखे तो उनसे सीधे पूछ लिया गया कि उनके कदमों से मंदी आने की कितनी संभावना है और ट्रंप को ऐसी किसी संभावना की परवाह नहीं दिखी। उन्होंने कहा कि भविष्यवाणी करना उन्हें पसंद नहीं है मगर अमेरिकी अर्थव्यवस्था में वह जितने बड़े बदलाव कर रहे हैं, उनके कुछ समय तक तो हलचल रहेगी। पिछले हफ्ते कांग्रेस में अपने संबोधन में भी उन्होंने यही संदेश दिया था और उनके प्रशासन के वरिष्ठ अधिकारियों मसलन वाणिज्य मंत्री आदि की बातों से भी यही दिखा। मंत्री ने चेतावनी दी कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था को सरकारी व्यय के नशे से छुटकारा दिलाना होगा।

सब जानते हैं कि शुल्क का इस्तेमाल करने से वृद्धि और मुद्रास्फीति पर क्या दूरगामी प्रभाव पड़ेंगे। परंतु मध्यम अवधि में कुछ सकारात्मक असर भी हो सकते हैं। फिर यह उथलपुथल क्यों? शायद इसलिए क्योंकि अपने कदमों और उनके समय के बारे में बताने में प्रशासन एकदम लचर रहा है। साथ ही कंपनियों तथा निवेशकों को उनके हिसाब से ढलने का पर्याप्त समय भी नहीं दिया गया है। इसकी वजह से नकारात्मकता फैल गई। अर्थव्यवस्थाओं और अमेरिकी बाजारों में माल बेचने वाली कंपनियों जैसे भारत की सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों को आगे के लिए अनुमान लगाते समय मंदी के जोखिम का भी ध्यान रखना होगा। मार्के की बात है कि ट्रंप को दूसरे राष्ट्रपति कार्यकाल में अपने आर्थिक विचारों पर इस कदर यकीन है कि उनके लिए वह मंदी का भी जोखिम उठा सकते हैं। अपने पहले कार्यकाल में उन्होंने कुछ व्यापार समझौतों पर दोबारा बातचीत की थी और कुछ शुल्क भी लगाए थे मगर इस बार उनके कदम ज्यादा व्यापक हैं और उनके लिए वह मंदी का जोखिम लेने को भी तैयार हैं।

जनसत्ता

Date: 11-03-25

इंसाफ के लिए बढ़ता इंतजार

निशांत यादव

भारतीय संविधान न्याय को जीवन का अधिकार के तहत अंगीकार करता है। एक सुदृढ़ प्रजातांत्रिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था कायम करने के लिए प्रस्तावना में भी नागरिकों तक न्याय सुनिश्चित करने का वादा किया गया था, लेकिन क्या यह वादा पूरा हो पा रहा है? न्यायालयों में कई दशकों से लंबित मामले बताते हैं कि वस्तुतः यह किसी भी प्रकार से पूरा होता नहीं दिखाई दे रहा है। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद-21 में कैदियों के जीवन और स्वतंत्रता के अपने मौलिक अधिकार के अंतर्गत निष्पक्ष एवं त्वरित सुनवाई के अधिकार को भी शामिल किया है। बावजूद इसके न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है। अकेले इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दस लाख से अधिक मुकदमे लंबित हैं। हालांकि न्यायालय ने यह अनुमान लगाया कि यदि फैसले त्वरित और बिना विलंब के हों, तो देश के सकल घरेलू उत्पाद में एक से दो फीसद की वृद्धि संभव है। मगर विडंबना है कि न्याय देने के लिए न्यायालयों में न्यायाधीशों की संख्या का ही व्यापक अभाव है।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों के लिए कुल 160 पद स्वीकृत हैं, लेकिन वर्तमान में कार्यरत न्यायाधीशों की संख्या पर गौर करें तो यह महज 79 है जो कुल स्वीकृत पद के आधे से भी कम है। ऐसी स्थिति में सभी को न्याय का सपना कैसे साकार हो सकता है? इसी समस्या को देखते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन और अवध बार एसोसिएशन ने 25 फरवरी 2025 को अपने अधिवक्ता सदस्यों से न्यायिक कार्य से विरत रहने का आह्वान किया, ताकि उच्चतम न्यायालय, कालेजियम, विधि मंत्रालय आदि का इस अहम मुद्दे की ओर ध्यान आकर्षित हो और रिक्त पद पर न्यायिक नियुक्ति के साथ इसका समाधान हो सके।

इस समय जनसंख्या के अनुपात में न्यायाधीशों की संख्या बेहद कम है। उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या की बात करें तो संविधान के अनुच्छेद-124 के अंतर्गत शीर्ष न्यायालय को अपने सदस्यों की संख्या बढ़ाने का अधिकार है। अपने गठन से लेकर आज तक निरंतर कार्य के बढ़ते बोझ और अनसुने मुकदमों की बढ़ती संख्या के कारण न्यायाधीशों की संख्या में समयानुसार वृद्धि भी होती रही है। वर्ष 1950 में आठ से बढ़ा कर उसे 1956 में ग्यारह कर दिया गया। इसके बाद 1960 में 14, वर्ष 1978 में 18, वर्ष 1986 में 26 वर्ष 2009 में 31 और वर्ष 2019 में 34 कर दिया गया था। हालांकि लंबित मामलों को देखते हुए अभी भी न्यायाधीशों की कमी महसूस की जाती है। उच्च न्यायालय और जिला न्यायालयों में न्यायाधीशों की संख्या देखें, तो विधि मंत्री ने राज्यसभा में एक प्रश्न के उत्तर में बताया था कि भारत में प्रति दस लाख जनसंख्या पर 21 न्यायाधीश है। ऐसे में न्यायाधीशों की कमी लंबित मुकदमों का एक बड़ा कारण है। जनसंख्या के अनुपात में न्यायाधीशों की संख्या अन्य राष्ट्रों की तुलना में भारत में बेहद कम है। अमेरिका में यह आंकड़ा 151 और चीन में 170 है। वर्ष 1987 में विधि आयोग ने अपनी रपट में प्रति दस लाख जनसंख्या पर 50 न्यायाधीशों का प्रस्ताव दिया था जिसे स्वीकार नहीं किया गया और अभी भी इनकी अधिकतम स्वीकृत पदों की संख्या को बेहद कम माना जाता है।

अदालतों में न्यायिक अधिकारियों/कर्मचारियों की कमी है, जिसके कारण कई मुकदमे लंबित रहते हैं। पीड़ितों को

न्याय मिलने में देरी होती है। यहां उल्लेखनीय है कि लंबित मुकदमों की समस्या निचले स्तर यानी अधीनस्थ न्यायालयों से सर्वाधिक होती है। भारत में सभी लंबित मुकदमों में से लगभग 87.5 फीसद मामले अधीनस्थ न्यायालयों में लंबित हैं। इसलिए अदालतों में न्यायिक अधिकारियों की कमी के कारण समस्या बुनियादी स्तर से ही शुरू हो जाती है। अधीनस्थ न्यायालयों में न्यायिक अधिकारियों के 5,388 से अधिक और उच्च न्यायालयों में 330 से अधिक पद खाली हैं। हालांकि उच्चतम न्यायालय के स्तर पर इस कमी को संज्ञान में लेते हुए विगत वर्ष वहां सभी पदों पर नियुक्ति कर दी गई थी, लेकिन पांच जनवरी 2025 को न्यायमूर्ति सीटी रवि कुमार और 31 जनवरी 2025 को न्यायमूर्ति हृषिकेश राय के सेवानिवृत होने के बाद वर्तमान में 34 न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या के सापेक्ष दो पद रिक्त हैं।

उच्च न्यायालयों में नियुक्तियों को लेकर तत्परता देखने को नहीं मिल पा रही है। यहां न्यायाधीशों के कुल स्वीकृत 1114 पदों में से 336 पद रिक्त हैं जो कुल संख्या का लगभग 30 फीसद है। छह उच्च न्यायालयों यथा उत्तर प्रदेश, तेलंगाना, पटना, राजस्थान, ओड़ीशा और दिल्ली में तो ये रिक्तियां लगभग 50 फीसद के बराबर हैं। केवल मेघालय और मणिपुर उच्च न्यायालयों में कोई पद रिक्त नहीं हैं। जनवरी, 2025 तक अधीनस्थ न्यायालयों में न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या 24,018 में से 5,146 पद रिक्त थे जो कुल न्यायाधीशों की संख्या का 21 फीसद है। जिन राज्यों में कम से कम सौ न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या है, उनमें से बिहार में सबसे अधिक 40 फीसद रिक्तियां (776) हैं। इसके बाद हरियाणा में 38 फीसद (297) और झारखंड में 32 फीसद (219) रिक्तियां हैं।

इस समस्या को देखते हुए अभी हाल ही में प्रधान न्यायाधीश संजीव खन्ना की अध्यक्षता वाली उच्चतम न्यायालय की विशेष पीठ ने तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की इस शर्त में सहूलियत दी कि राज्य उच्च न्यायालयों में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति तभी की जा सकती है, जब उनकी न्यायिक रिक्तियां स्वीकृत पद के 20 फीसद से अधिक हो। पीठ ने लंबित मामलों की बढ़ती संख्या पर लगाम लगाने की तात्कालिक जरूरत को ध्यान में रखते हुए यह आदेश पारित किया। संविधान के अनुच्छेद 224-ए में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीशों को तदर्थ न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने का प्रावधान है। पीठ ने कहा कि एक तदर्थ न्यायाधीश आपराधिक अपीलों की सुनवाई के लिए एक खंडपीठ में मौजूदा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के साथ हो सकता है। तदर्थ न्यायाधीशों की संख्या उच्च न्यायालय की स्वीकृत न्यायिक शक्ति के दस फीसद से अधिक नहीं होनी चाहिए।

जल्द सुनवाई सामाजिक न्याय का एक घटक है। दरअसल, सभी की यह चिंता होती है कि अपराधी को उचित समय के भीतर सजा दी जाए और निर्दोष को आपराधिक कार्यवाही के दुश्चक्र से मुक्त किया जाए। प्रश्न उठता हैं कि न्यायिक नियुक्तियों के बगैर हम त्वरित न्याय की अवधारणा को कैसे साकार कर सकेंगे। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 में स्पष्ट वर्णित है कि त्वरित न्याय, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार है। आरोपी व्यक्तियों या कैदियों के लिए यह एक गारंटीकृत अधिकार है कि उनकी सुनवाई तेजी से पूरी हो, लेकिन

भारत में समय पर मुकदमों के समाधान होने में व्यवधान उत्पन्न करने वाले कई कारण अब भी मौजूद हैं, जिसके परिणामस्वरूप मुकदमे न्यायालयों में वर्षों लंबित रहते हैं। कई विचाराधीन कैदी तो इंसाफ का इंतजार करते रह जाते हैं और कारावास में ही उनकी मृत्यु हो जाती है। यह नागरिक के रूप में जीवन का अधिकार और सर्वव्यापक अवधारणा में मानव अधिकार का उल्लंघन है। विधि मंत्रालय का संवैधानिक दायित्व है कि वह न्यायाधीशों की नियुक्ति और जनसंख्या के अनुरूप इनकी संख्या में वृद्धि कर विलंबित न्याय को नियत समय-सीमा के भीतर सुनवाई कर त्वरित न्याय सुनिश्चित करे ।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 11-03-25

कनाडा में कार्नी के हाथों में कमान

विवेक काटजू, (पूर्व राजनयिक)

कनाडा की लिबरल पार्टी ने जस्टिन ट्रूडो के उत्तराधिकारी | के रूप में मार्क कार्नी को चुन लिया है और वह नए प्रधानमंत्री बनने जा र रहे हैं। ट्रूडो के शासनकाल में कनाडा और भारत के रिश्ते बहुत ही खराब हो गए थे। कनाडाई प्रधानमंत्री ने बेहद गैर-जिम्मेदाराना रवैया अपनाया था और संसद में खालिस्तानी आतंकी हरदीप सिंह निज्जर की हत्या का दोष भारतीय 'एजेंट' पर मढ़ दिया था। स्वाभाविक ही भारत ने उस दावे को नकार दिया और यह बार-बार कहा कि यदि कनाडा के पास ठोस सबूत हों, तो भारत सरकार इस मामले को देख मामलका सकती है। दोनों देशों के रिश्ते पिछले साल अक्तूबर में एक प्रकार से टूट गए थे, जब सिंगापुर में भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोभाल की बैठक कनाडा के उच्चाधिकारियों से हुई, जिसमें कनाडा ने फिर से भारत पर उंगलियां उठाईं और बात यहां तक पहुंच गई कि कनाडा के एक वरिष्ठ कूटनीतिज्ञ ने वाशिंगटन पोस्टजैसे चर्चित अखबार में भारतीय गृह मंत्री को भी आरोपों के घेरे में लेने की कोशिश की। इन सबकी वजह से मामला काफी गंभीर हो गया था ।

बहरहाल, अपनी घटती लोकप्रियता के कारण जस्टिन ट्रूडो को पद छोड़ना पड़ा और अब कार्नी को नया प्रधानमंत्री चुना गया है, लेकिन सवाल यही है कि कनाडा और भारत के रिश्तों में क्या अब सुधार होगा और ट्रूडो के गलत कदमों से कार्नी पीछे हटेंगे ? हां, अगर वह ऐसा करना चाहें, तो उन्हें इस बात से जरूर मदद मिलेगी कि तमाम प्रयासों के बावजूद कनाडा की पुलिस निज्जर हत्याकांड मामले को अदालत में नहीं ले जा पाई और सूचना यह भी है कि जिन चार भारतीयों को हिरासत में लिया गया था, उनको जमानत पर रिहा कर दिया गया है।

वास्तव में, कार्नी की प्राथमिकताओं में कनाडा- भारत द्विपक्षीय रिश्ते शायद ही इस समय ज्यादा महत्व रखेंगे। वहां आगामी अक्तूबर तक राष्ट्रीय चुनाव होने हैं और विपक्षी कंजरवेटिव पार्टी की लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है। वह जल्द चुनाव चाहती है, क्योंकि उसके मुताबिक, कनाडा घरेलू और बाहरी, दोनों मोर्चों पर बुरी तरह से घिरा हुआ है। मार्क कार्नी पर हमलावर होते हुए उसने यह भी कहा है कि नए प्रधानमंत्री के पास जनादेश नहीं है।

ऐसे में कार्नी की पहली प्राथमिकता घरेलू समस्याओं से पार पाने की होगी। उनको अपनी पार्टी को चुनाव के लिए तैयार करना है। इसलिए, उनका बमुश्किल ध्यान विदेश नीति पर जाएगा, और अगर जाएगा भी, तो वह कनाडा- अमेरिका रिश्ते पर ही नजर बनाए रखेंगे। इसकी वजह यह है कि डोनाल्ड ट्रंप ने जिस दिन से अमेरिकी राष्ट्रपति का पद संभाला है, उन्होंने मेक्सिको और कनाडा के खिलाफ मोर्चा खोल दिया है। उन्होंने यहां तक कहा है कि कनाडा को अमेरिका का हिस्सा बन जाना चाहिए। ट्रंप के इस बयान से कनाडा में राष्ट्रवाद की एक लहर जरूर पैदा हुई और कनाडा ने ट्रंप के सुझाव को सिरे से खारिज कर दिया, लेकिन ट्रंप व्यापार को लेकर कनाडा पर लगातार दबाव बढ़ा रहे हैं। उनका मानना है कि कनाडा के उत्पाद अमेरिका में आसानी से प्रवेश कर जाते हैं, जिससे अमेरिका के कृषि, उद्योग और व्यापार पर बुरा असर पड़ता है। उन्होंने भले ही 2 अप्रैल तक सीमा शुल्क की बढ़ोतरी को टाल दिया है, लेकिन कार्नी के इस बयान से कि अमेरिका को कोई गलती नहीं करनी चाहिए, क्योंकि व्यापार हो या हॉकी, आखिर में कनाडाई ही जीतेंगे', दोनों देशों की आपसी तल्खी समझी जा सकती है। सच यही है कि कनाडा और अमेरिका की अर्थव्यवस्था व व्यापार एक-दूसरे से जुड़े हैं, पर चूंकि कनाडा की अर्थव्यवस्था छोटी है, इसलिए 'सीमा शुल्क युद्ध' में उसको नुकसान ज्यादा होगा। इसी कारण कार्नी किसी तरह व्यापार और सीमा शुल्क की गुत्थी सुलझाना पसंद करेंगे।

जहां तक भारत का सवाल है, कनाडा का पूरा राजनीतिक वर्ग यह जानता है कि उसकी भारत नीति का असर कुछ हद तक उसकी घरेलू राजनीति पर भी पड़ता है। कनाडा की उदारवादी नीति और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संबंधी कानून के कारण ही वहां खालिस्तानी तत्वों को ऑक्सीजन मिलती रही है। यह भारत को कतई स्वीकार्य नहीं है। नई दिल्ली यह भी नहीं चाहती कि कनाडा की सरकार ऐसे प्रचार की इजाजत दे, जिसमें हिंसा और हत्यारों की प्रशंसा की जाए ? पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के हत्यारों की सार्वजनिक प्रशंसा सुर्खियों में रही है, जिस पर कनाडा सरकार ने अफसोस तो जताया, लेकिन उसे रोक न पाने की लाचारी भी व्यक्त की। जाहिर है, ऐसा नहीं लगता कि नए प्रधानमंत्री कनाडा के कानून में बुनियादी बदलाव कर सकने में सफल हो सकेंगे। फिर, कनाडा के खालिस्तानी समर्थकों से लिबरल पार्टी के गहरे संबंध हैं और चुनाव भी सिर पर है। ऐसे में, कार्नी कुछ ठोस तो नहीं, मगर ऐसे बयान दे सकते हैं कि वह दोनों देशों के रिश्ते सुधारने के हिमायती हैं। इस क्रम में वह कनाडा में रहने वाले अनिवासी भारतीयों व छात्रों की प्रशंसा कर सकते हैं और भारत-कनाडा के पहले के अच्छे संबंधों की इशारा करते हुए द्विपक्षीय रिश्तों में एक नया अध्याय लिखने की इच्छा जता सकते हैं। मगर इन सबको वह विदेश नीति में प्राथकिमता शायद ही बनाना पसंद करेंगे, क्योंकि उनकी समस्याएं और प्राथमिकताएं दूसरी हैं।

ऐसा नहीं लगता कि निज्जर केस के मामले में कनाडा अब अगले कुछ महीनों में कोई सनसनीखेज खुलासा करेगा या कोई कदम उठाएगा। सत्तारूढ़ दल की नजर चुनाव और अमेरिका कनाड़ा रिश्तों पर ही होगी। हालांकि, दो ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें व्यावहारिक बदलाव पर नजर रहेगी। पहला है, दूतावासों में उच्चायुक्तों की वापसी, क्योंकि दोनों देशों ने अपने- अपने उच्चायुक्त वापस बुला लिए हैं। और दूसरा, वा के मामले में ढील देना । हालांकि, यह भी कितना हो सकेगा, कहा नहीं जा सकता, क्योंकि अभी होता यह है कि भारतीय सेना या खुफिया एजेंसी में काम कर चुके अधिकारियों को वीजा देते वक्त कनाड़ा न सिर्फ उनके सेवा काल की पूरी जानकारी लेता है, बल्कि कश्मीर में नियुक्त रहे लोगों को मानवाधिकार का हवाला देकर वीजा देने से बचता है। जबकि, अफगानिस्तान या वियतनाम युद्ध में सेवा देने वाले अमेरिकी या आयरलैंड में काम कर चुके अंग्रेजों से ऐसे सवाल नहीं पूछे जाते । रही बात आपसी व्यापार की, तो चूंकि पिछले दिनों की कटुता का कारोबार व तेल आयात पर कोई असर नहीं पड़ा है, इसलिए इसमें आगे भी शायद ही कोई बदलाव होगा।

Date: 11-03-25

मॉरीशस के साथ और मधुर होंगे भारतीयों के रिश्ते

भास्वती मुखर्जी, (पूर्व राजदूत)

नवीनचंद्र रामगुलाम को मॉरीशस का प्रधानमंत्री चुने जाने के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की मॉरीशस यात्रा समयानुकूल है। यह दोनों देशों को एक सूत्र में बांधने वाले अहम रिश्तों को दर्शाती है। मॉरीशस उन चुनिंदा देशों में है, जिससे स्वतंत्र भारत के 1948 में राजनयिक संबंध स्थापित हुए, तब वह देश स्वतंत्र नहीं हुआ था।

ये द्विपक्षीय संबंध साझा इतिहास, जनसांख्यिकी और संस्कृति पर आधारित हैं। द्वीप की 12 लाख आबादी में से भारतीय मूल के लोगों की संख्या लगभग 70 प्रतिशत है। कुल आबादी में 52 प्रतिशत हिंदू हैं और अधिकांश लोग भोजपुरी एवं हिंदी बोलते या समझते हैं। शायद इसी कारण से इस द्वीप राष्ट्र में पवित्र स्थलों एवं आध्यात्मिक संस्कृति का अनुभव भारत से भी कहीं ज्यादा मंत्रमुग्ध कर देने वाला है! दोनों देशों के बीच संबंधों का एक उल्लेखनीय उदाहरण है ग्रैंड बेसिन, जो मॉरीशस के दक्षिण-पश्चिम में स्थित एक पहाड़ी झील है, जिसे हिंदू गंगा तालाब के नाम से जानते हैं और शिवरात्रि पर्व पर दर्शन करने जाते हैं।

आज भारत और मॉरीशस के बीच स्थायी सांस्कृतिक और दोनों देशों के लोगों के बीच आपसी रिश्तों को अनेक संस्थानों और माध्यमों से पोषित किया जाता है, जो भारतीय विरासत को संरक्षण और बढ़ावा देते हैं। भारत मॉरीशस संस्कृति का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण गीत गवई की मधुर धुनों में देखा जा सकता है, जिसे 2016 में यूनेस्को द्वारा मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर के रूप में मान्यता दी गई है। गीत गवई भोजपुरी लोक गीतों की एक परंपरा है, जिसे शादियों, त्योहारों और विशेष अवसरों पर प्रस्तुत किया जाता है। यदि किसी को

पोर्ट लुइस में इन संगीतमय प्रस्तुतियों का आनंद लेने का अवसर मिलता है, तो वह वहां बैठे-बैठे आरा, बलिया, छपरा या बनारस घूम आता है, जहां से सम्मानीय गिरमिटिया लोग यहां आए थे।

पटना में स्थापित मॉरीशस के राष्ट्रपिता शिवसागर रामगुलाम की प्रतिमा, राहगीरों को न केवल दोनों देशों की साझा धरोहर की याद दिलाती है, बल्कि उन्हें स्वतंत्रता के विशेष सूत्रों में भी बांधती है। चूंकि भारत की संस्कृति और सभ्यता अत्यधिक जटिल व विविधतापूर्ण है, इसलिए भारत के विकास के साथ-साथ आप्रवासी भारतीयों की भूमिका के बारे में विचारों में भी कई बदलाव आए हैं। एक आम और व्यापक स्वीकृत धारणा है कि भारतीयों के लिए संपूर्ण विश्व एक परिवार है। यह विचार भारत की सबसे बड़ी संपदा है, जो 'सॉफ्ट पावर' के रूप में भारत के निर्माण में शामिल है।

1901 में डरबन से मुंबई जाते समय गांधीजी संक्षिप्त अवधि के लिए मॉरीशस में रुके थे और उनके इस दौरे से वहां परिवर्तन की प्रक्रिया को गति मिली थी, जिसके परिणामस्वरूप मॉरीशस में समान अधिकारों के लिए राजनीतिक संघर्ष शुरू हुआ। जब मॉरीशस ने 1968 में उपनिवेशवाद की बेड़ियों को तोड़ा, तो उसने गांधीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करने और अपनी मातृभूमि से घनिष्ठ संबंधों का उत्सव मनाने के लिए 12 मार्च को अपने स्वतंत्रता दिवस के रूप में चुना। आपको याद होगा कि गांधीजी ने 1930 में 12 मार्च को ही दांडी यात्रा की शुरुआत की थी।

बहरहाल, अब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की 11-12 मार्च, 2025 को मॉरीशस यात्रा दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों को नई गति प्रदान करेगी। प्रधानमंत्री मोदी ने इससे पहले 2015 में मॉरीशस का दौरा किया था। इस महत्वपूर्ण यात्रा से दोनों पक्षों को द्विपक्षीय संबंधों का जायजा लेने और आने वाले महीनों और वर्षों में जुड़ाव के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करने में मदद मिलेगी। खास यह भी है कि प्रधानमंत्री मोदी 12 मार्च को मॉरीशस के राष्ट्रीय दिवस समारोह के मुख्य अतिथि होंगे, जिसमें भारतीय वायु सेना की आकाश गंगा टीम सहित भारतीय रक्षा बलों की एक टुकड़ी भी भाग लेगी। बताया जाता है कि इस अवसर को ऐतिहासिक बनाने के सिलसिले में भारतीय नौसेना का एक जहाज भी मॉरीशस का दौरा करेगा। प्रधानमंत्री की यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच अनेक समझौतों पर हस्ताक्षर होने हैं और साथ ही, अनेक विकास परियोजनाओं की नींव रखी जाएगी। इन सबसे मॉरीशस से भारत के जुड़ाव को बल मिलेगा। वाकई, दोनों देशों के संबंधों का भविष्य उज्ज्वल है।